

शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम और शिक्षा

□ राम विलास जांगिड़

शिक्षा को सीखने-सिखाने की प्रक्रिया मानने पर शिक्षण-विधि विमर्श के केन्द्र में आ जाती है। शिक्षा-दर्शन और शिक्षा-सिद्धांतों की रोशनी में ही शिक्षण विधियों का आकलन, परीक्षण और निर्मिति संभव है। प्रस्तुत टिप्पणी में शिक्षा के ध्येय को परिसीमित करने से शिक्षण-विधि में उत्पन्न संकीर्णता और यांत्रिकता के सहसंबंध के साथ बच्चे पर उसके दुष्प्रभावों को इंगित किया गया है। इस विमर्श को वैकल्पिक शिक्षण विधियां प्रस्तावित करके आगे बढ़ाया जा सकता है।

किसी भी शिक्षा स्नातक पाठ्यक्रम में दाखिला पाने के बाद मन में यही रहता है कि परीक्षा में अच्छे अंक किस तरह लाए जाएं। परीक्षा में अच्छे अंक पाने के लिए छात्र वही गतिविधि करता है जो उसके अंकों में इजाजा कर सके। ऐसी गतिविधि चाहे उसके अनुकूल हो या न हो। उसे इस बात की कोई परवाह नहीं है। अपने किसी भी व्यवहार से तथाकथित व्याख्याता/शिक्षक को अपनी ओर आकर्षित करना उनमें से एक है।

शिक्षा की परिभाषाएं रटी जाती हैं। बालक का सर्वांगीण विकास हो यही शिक्षा है। वह एक सुसभ्य नागरिक बने यही शिक्षा है। अलग अलग लेखक के हिसाब से शिक्षा का चित्रण दिमाग में बैठाना पड़ता है। व्याख्याता जो भी शिक्षा के बारे में अपनी राय देता है, उसे खट से अपने दिमाग की 'फ्लापी' में 'रिकार्ड' करना पड़ता है। हां, जी हां को बढ़ावा मिलता है। गरदनें झुकी रखकर चुपचाप शिक्षा के क्षेत्र में व्याख्याताओं द्वारा जारी विज्ञप्तियों का अनुश्रवण करना पड़ता है। बढ़िया अंक जो लाने हैं। परीक्षा रूपी वैतरणी को एक झटके में और बड़े अच्छे तरीके से पार करने के लिए ये सब करना पड़ता है। मन मार कर सब हंसते हंसते सहना पड़ता है। नहीं तो 'सैसनल मार्क्स का भूत' देखा कि नहीं? कमोबेश यही स्थिति एस.टी.सी. विद्यालयों की भी है।

परीक्षा में येन केन अच्छे अंक लाए जाते हैं। कुछ समय बाद सरकार अपने विद्यालयों में येन केन लाए अच्छे अंकों के आधार पर उन्हें शिक्षक बना देती है। उन्हें निश्चित पैसा (वेतन) देकर विद्यालय में भेज देती है। अब शुरू होता है असली खेल। एक लम्बा खेल। इस खेल को बच्चे के पढ़ाने का खेल कहा जा सकता है।

बच्चा! क्या तस्वीर है? एक गरीब बच्चा। मैले कुचेले कपड़ों में लिपटा तन। ग्यारह नम्बरी। जिसकी नाक बहने पर मुंह पर ग्यारह अंकित हो जाते हैं। कभी सर्दी की फटकार से तो कभी

शिक्षक की डांट से। ऐसा तन अपने भोले मन को लेकर थैले के साथ 'हमारी' शिक्षा शाला में पदार्पण करता है। उसे शिक्षा जो लेनी है। हाथ में डंडा और वाणी में विज्ञप्तियां लेकर शिक्षक खड़ा हो जाता है। उसे इस बालक का सर्वांगीण विकास जो करना है। ठोक पीटकर उसे सभ्यता का पाठ पढ़ाना है। देश का नागरिक तैयार करना है।

लेकिन असल में शिक्षा की सब परिभाषाएं फेल। सब कुछ खत्म। बी.एड. और एस. टी.सी. में पढ़ा सब कुछ बेकार। अलबत्ता शिक्षक को मौका मिला है पिछला हिसाब पूरा करने का। वे भी अब बच्चों के आगे विज्ञप्तियां जारी करने लग गए। उनके खिलाफ फतवे का फरमान सुनाने लग गए। करें भी क्या? उन्होंने भी इसे भुगता है। जीवन गणित का हिसाब चुकता जो करना है। प्रशिक्षक ने जो उनके साथ किया वही तो सब कुछ करेंगे।

शिक्षा इस तरह से एक वर्णन रोग से पीड़ित है। शिक्षा मात्र परीक्षा उत्तीर्ण करना है। बालक अगर परीक्षा में कम अंक लाए तो अपनी सरकार शिक्षक से सवाल जबाब जो करती है। अतः बढ़िया शिक्षक वही है जो वर्णन करके, विज्ञप्ति जारी करके, धौंस जमाके, जबरदस्ती से छात्रों के दिमाग के कम्प्यूटर की फ्लापी में कुछ तथ्य, आंकड़े भर दे। जमाने के हिसाब से बढ़िया छात्र वही है जो यन्त्रवत कम्प्यूटर की फ्लापी में जमा सूचनाओं को 'केवल' परीक्षा के समय निकाल सके। तत्पश्चात् वह उन्हें कागज पर उतार सके। इसी दौरान अपने शिक्षा काल में बढ़िया छात्र वही है जो दब्बू बनकर, शांत रहकर, घबरु बनकर, शिक्षक को उसके दिमाग से खेलने दे। उसकी खोपड़ी में सूचनाएं भरने दे। ठीक इसी तरह जैसे हेयर कटिंग सैलून में कांच दिखाते हुए - देखते हुए- ग्राहक चुपचाप अपनी हजामत देख सकता है। उसे हिलने डुलने का अवसर भी नहीं होता।

इस तरह से शिक्षक का बोला हुआ यथार्थ, सत्य, बालक के

भेजे में घुसता है। यह यथार्थ अब गतिहीन होकर, जड़ बनकर, अचेतन होकर अलग अलग खांचों में बंटकर विद्यार्थी में जमा होता है। इस तरह से यह केवल शब्द मात्र ही रह जाते हैं। शिक्षक एक यथार्थ को शब्द रूप दे देता है। चारों ओर केवल शब्दों का विवाद ही शेष रह जाता है। बाद में बालक विद्यालयी शिक्षा पूर्ण करके शब्दों का विवाद करना अच्छी तरह से सीख लेते हैं। अब शब्दों की विवादिता को ही देख लें। हमारी राजनीति किस तरह से शून्य बन गई है। केवल शब्द रह गया है। इसके लिए न तो चिन्तन है न ही इसके अनुरूप कर्म। किसको फुरसत है ऐसे चिन्तन और कर्म की? हमारी महान् संस्कृति का, मनसा वाचा कर्मणा का ढोल फूट गया। उसकी खाल तक न बची। हमारे सभी क्षेत्रों में यही शब्द केवल खोखला वाग्जाल बन कर रह गए हैं। ये रहेंगे भी क्योंकि हमने विद्यालयी खेतों में ऐसा ही बीज बोया है। बीज बोया है तो उसकी फसल उगेगी भी। उसे काटना भी पड़ेगा।

शिक्षा में बालक को आदेश दिया जाता। उसके दिमाग में भरा जाता है। सदा सत्य बोलो। गांधी जी ने कहा। फलाने ने कहा। सदा सत्य बोलने का फल उत्तम है। यह सब छात्र को सुनाया जाता है। वह सुनता है। छात्र को पढ़ाया जाता है। वह पढ़ता है। छात्र को रटाया जाता है, वह रटता है। बार बार दोहराता है कि सदा सत्य बोलो। यह जाने बिना कि इसके मायने क्या हैं? सत्य क्या है? शिक्षक ने कितनी बार इसे बोला है? इसे कब बोलना ठीक है? क्या एक असत्य भी सत्य है?

इस तरह से कक्षा कक्ष में सत्य के भ्रम के भूत का पुनर्जन्म होता है। वही हाहाकार मचाता है। समष्टि में वाग्जाल बनकर घूमता है। पांच चौके बीस कहता फिरता है। बिना उसकी गहराई में पहुंचे। बिना उसके मर्म को जाने। तब पैदा होता है अलगाव। जहां अलगाव है वहां कोसों दूर है विकास। अलगाव के आगे विकास का धुंआ तक नहीं पहुंच पाता। मूल्य और यथार्थ को वर्णन रोग के वायरस एक के बाद एक खत्म कर देते हैं। मूल्य और यथार्थ निर्जीव बनकर सजीव का भ्रम पालते हैं। मूल्यों को अव्यवहारिक बना दिया जाता है। उन्हें पीट-पीट कर उनके मूल तक पहुंचा दिया जाता है। सारा यथार्थ मुंह बिदकाकर दौड़ता नजर आता है। मूल्यों का

अवमूल्यन हो जाता है। बेचारे औंधे मुंह गिर पड़ते हैं। समस्त अशमीभूत हो जाते हैं। अलबत्ता उनका भूत पुस्तकों में नजर आता है। स्वयं शिक्षा भी अशमीभूत हो जाती है।

इस सारे प्रक्रम में छात्र पढ़ाये जाते हैं। शिक्षक उन्हें पढ़ाने का काम करते हैं। छात्र कुछ नहीं जानते। वे बुद्धु हैं। उनके दिमाग में कचरा भरा होता है। उनमें सोच नाम की कोई चीज नहीं होती है। वे केवल मात्र अधिगम की वस्तु है। वे केवल 'ठीकरे' मात्र हैं। सारी अक्लमंदी का ठेका शिक्षक के नाम छूटा है। शिक्षार्थी ऐसे पात्र हैं जिनसे पात्र की उम्मीद भी करना बेकार है। वे बेकार पात्र के समान 'ठीकरे' हैं। वे केवल दब्बू बनकर रहें। शिक्षक की मर्जी के खिलाफ उनका श्वास लेना भी अनुचित है। ऐसा सब कुछ करते हुए वे सब कर्म के जरिए सक्रिय बने रहने के भ्रम में रहें। भ्रम में कुछ क्रियाशीलता जोड़ें तो वे जबरदस्ती नाटक करने का काम जरूर कर सकते हैं। सक्रिय बने रहने के भ्रम का भी वे नाटक खेल सकते हैं।

शिक्षा के तंत्र में इस तरह से शिक्षा में न जिज्ञासा है और न ही चिन्तन। केवल शब्दों की भरमार है। इन शब्दों के सागर में कर्मयुक्त

आचरण के सीप नहीं है। इस तरह से हम केवल अपूर्णों की पौध ही तैयार कर रहे हैं। कहां समाप्त होगी ऐसी प्रक्रिया? हमारी पौधशाला में केवल शब्दों का ढिंढोरा ही पीटा जाता है। बी.एड. एवं एस.टी.सी. की शिक्षा पौधशाला में ऐसे ही शिक्षक तैयार किए जा रहे हैं। जिस तरह से अपूर्ण शिक्षक तैयार किए जा रहे हैं वह धारा कब रुकेगी? वही तैयार शिक्षक बी.एड. और एस.टी.सी. की फैक्ट्री से निकलने के बाद अपने छात्रों के साथ ऐसा ही तो करेंगे। पूरा विश्व इक्कीसवीं सदी की दहलीज पर खड़ा है। यह सब दृश्य लेकर।

ऐसे में हम कहां है? हमारी शिक्षण की प्रक्रिया क्या है? क्या अब भी बालक केवल दब्बू बनकर ज्ञान के अधिकारी की विज्ञप्तियां अपने भेजे में जमा करता रहेगा? क्या इन सब में, शिक्षा में समझ का कोई स्थान नहीं? इन प्रश्नों के चक्रव्यूह को हमें मिलकर देखना चाहिए। भेदना आगे की बातों में सम्मिलित किया जा सकता है, इसके लिए सार्थक चिन्तन करके शब्द को कर्म में ढालना पड़ेगा। 'मनसा वाचा कर्मणा' को शिक्षा के दर्पण में साक्षात् देखना पड़ेगा। ♦

**शिक्षा के तंत्र में इस तरह से शिक्षा
में न जिज्ञासा है और न ही
चिन्तन। केवल शब्दों की भरमार है।
इन शब्दों के सागर में कर्मयुक्त
आचरण के सीप नहीं है। इस तरह
से हम केवल अमानव की पौध ही
तैयार कर रहे हैं। कहां समाप्त
होगी ऐसी प्रक्रिया? हमारी
पौधशाला में केवल शब्दों का
ढिंढोरा ही पीटा जाता है। बी.एड.
एवं एस.टी.सी. की शिक्षा पौधशाला
में ऐसे ही शिक्षक तैयार किए जा रहे
हैं।**